Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 GISRRJ | Volume 3 | Issue 6 | ISSN : 2582-0095

योगवासिष्ठ महारामायण में आत्मतत्त्व का विवेचन

डॉ0 जी.एल. पाटीदार, नन्दकिशोर प्रजापति
संस्कृत-विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)

Article Info
Volume 3 Issue 6
Page Number: 30-39
Publication Issue :
November-December-2020

Article History
Accepted : 10 Dec 2020
Published : 24 Dec 2020

उद्देश्य-

श्रुति मन्त्रांश "अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत"[1] अर्थात् हे ! ज्ञान के प्रेमी लोगों परमात्मा की नित्य उपासना करों। परमात्मा की अनुभूति ज्ञानयोग एवं भक्तियोग से होती है, श्रुतिमहावाक्य भी है- "प्रज्ञानं ब्रह्म"[2] वह ज्ञान ही ब्रह्म है। ज्ञान ही वह विद्या है, जो उस परमतत्त्व की प्राप्ति कराता है। मानव की सहज जिज्ञासा है कि वह नित्य चिन्तन से जीव, जगत् ओर आत्मा को समझे तथा समझाना अत्यंत आवश्यक भी है। यहाँ आत्मतत्त्व के स्वरूप को योगवासिष्ठ महारामायण की दृष्टी से जानने का प्रयास किया गया है, उस दिव्यतत्त्व की उपासना, लोक मंगल और आनंद ही परम प्रयोजन है। ज्ञान का विकास संवर्धन ही इस आलेख का परम उद्देश्य है।

कूटशब्द-
संस्कृत, वाङ्मय, आत्मतत्त्व, योग, विद्या, वेद, उपनिषद्, वसिष्ठ, रामायण, ज्ञान, उपासना, विवेक, कान्तदर्शी, ब्रह्म।

योगवासिष्ठ महारामायण-

संस्कृत वाङ्मय में योगवासिष्ठ महारामायण का विशिष्ट महत्त्व रहा है। योगवासिष्ठ भारतीय सनातन दर्शन परम्परा में अद्वैत वेदान्त का अद्भुत ग्रन्थ रहा है। परम्परानुसार आदिकवि वाल्मीकि योगवासिष्ठ महारामायण के रचनाकार माने जाते हैं किन्तु वास्तविक रचयिता वसिष्ठ है। इसको ज्ञानवासिष्ठ भी कहा जाता है। इसमें ऋषि वसिष्ठ भगवान् राम को निर्गुण ब्रह्म का ज्ञान देते हैं। विद्वज्जनों के अनुसार सुख और दुःख, जरा और मृत्यु, जीवन और जगत्, जड़ और चेतन, लोक और परलोक, बंधन और मोक्ष, ब्रह्म

[1] ऋग्वेद- 8.69.8

[2] ऐतरेयोपनिषद्-1.2

Copyright : © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

और जीव, आत्मा और परमात्मा, आत्मज्ञान और अज्ञान, सत् और असत्, मन और इंद्रियाँ, धारणा और वासना आदि विषयों पर कदाचित् ही कोई ग्रंथ हो जिसमें योगवासिष्ठ की अपेक्षा अधिक गंभीर चिंतन तथा सूक्ष्म विश्लेषण हुआ हो। योगवासिष्ठ ग्रन्थ छः प्रकरणों में पूर्ण है। योगवासिष्ठ महारामायण में जगत् की असत्ता और परमात्म सत्ता का अलग अलग मत मतान्तरों के माध्यम से प्रतिपादन किया गया है। योगवासिष्ठ का मुख्य उद्देश्य सांसारिक लोगों को व्यावहारिक आध्यात्म का मार्ग बताकर जीवन जीने और समझने का उत्कृष्ट उपाय बतलाया गया है।

आत्म तत्त्व क्या है ?

आत्मतत्त्व का अर्थ है आत्मा का ज्ञान। स्वयं के विषय में ज्ञान। आत्मा स्व प्रकाश चैतन्य है। योगवासिष्ठ में आत्मा अद्वैत है। वेदवाक्य है कि "अयम् आत्मा ब्रह्म"[3] अर्थात् यह आत्मा ब्रह्म है तथा "नैषा तर्केण मतिरापनेया"[4] आत्म तत्त्व को बुद्धि तर्क के द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता है। और भी "आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा"[5] आत्मतत्त्व को बताने वाला आश्चर्यमय है और उसे पाने वाला कुशल है। इस आत्मा का ज्ञान विवेक के मार्ग से ही निकलता है। अद्वैत वेदान्त दर्शन का विवेच्य विषय सत्य है। सत्य का स्वयं के आत्यन्तिक सत्य का अनुसन्धान इसका मूल चिन्तन है। चिन्तन की बहुलता ज्ञान नही है और न ही चिन्तन का अभाव ज्ञान है। ज्ञान तो वहां है, जहां वह है, जो चिन्तनों का भी साक्षी है और चिन्तनों के अभाव का भी। क्योकि चिन्तन में सत्य नही है और न ही उसे छोड देने में है। सत्य तो उसके प्रति जागने में है। आत्मा सत्यस्वरूप है। योगवासिष्ठ में कहा है कि आत्मा को अपनी सात्विक बुद्धि द्वारा ही जाना जाता है-"दृश्यते स्वात्मनैमात्मा स्वया सत्त्वस्थया धिया"।[6]

[3] माण्डूक्योपनिषद्-1.2

[4] कठोपनिषद्-1.2.9

[5] कठोपनिषद्-1.2.7

[6] योगवासिष्ठ-6.1.118.4

आत्मविद्या की सत्ता

आत्मतत्त्व सब प्रकार से अपने अनुभव के द्वारा ही सर्वत्र प्रकार से जाना जाता है योगवासिष्ठ में कहा है कि "सर्वदा सर्वथा सर्वं स प्रत्यक्षोऽनुभूतितः"[7] गीता में लिखा है श्रीकृष्ण ने अपनी व्यापक विभूतियों के वर्णन के अवसर पर समस्त विद्याओं में अध्यात्म विद्या को ही अपना स्वरूप कहकर इसकी श्रेष्ठता प्रख्यापित की है और कहा भी है कि "अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम्"[8]। मैं जिस प्रभू सत्ता को प्रेम कहता हूँ, वह भीतरी आनन्द का बाहरी परिणाम है, क्योकि संसार की सारी वस्तुएँ उसी का रचनाविस्तार है। चिन्तन की ऐसी स्वतन्त्र सत्ता ही भारतीय दर्शन का प्राण है। इसे ही लक्ष्य कर मुण्डकोपनिषद् में ब्रह्मविद्या अर्थात् दर्शनशास्त्र को सर्वविद्या-प्रतिष्ठा कहा गया है "स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह"[9] तथा "ब्रह्म ब्रह्मण उज्जभार"[10] ब्रह्मज्ञान से ब्रह्म ज्ञान विकसित हुआ। यह ब्रह्मज्ञान ही आत्मविद्या है। जो मेरे होने से उसके होने का अहसास करता है। इसीले श्रुति कहती है "सर्वं खल्विदं ब्रह्मम्"[11] अर्थात् सर्वत्र ब्रह्म ही है। प्राप्ति का मार्ग आत्मविद्या ही है।

योगवासिष्ठ के अनुसार आत्म का स्वरूप

आत्मा अविनाशी अजर-अमर है। आत्मा चैतन्यरूप एवं उत्पत्ति विनाश रहित है। भूत, भविष्यत् और वर्तमानकालीन कोई भी विकल्प उसका स्पर्श नही करता। आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ है, आत्मा ही जीव का स्वरूप है। ज्ञान समदृष्टि है। इहलोक में भावसागर को पार लगाने तथा आत्मज्ञान के मार्ग विषय पर योगवासिष्ट में कहा गया है कि-

संसारोत्तरेण युक्तिर्योगेशब्देन कथ्यते ।
तां विद्धि द्विप्रकारां त्वं चित्तोपशमधर्मिणीम् ।।[12]

---

[7] योगवासिष्ठ-5.73.15

[8] श्रीमद्भगवद्गीता, 10.32

[9] मुण्डकोपनिषद्,1.1

[10] अथर्ववेद- 4.1.3

[11] छान्दोग्योपनिषद्-3.14.1

[12] योगवासिष्ठ-6.1.13.4

आद्यन्तरहितः सत्यश्चिद्रूपो निर्विकल्पकः ।
आत्मा निरूपिताकाशो जीवस्याद्यः परात्परः ।।[13]

यह आत्मा समस्त पदार्थो से श्रेष्ठ है। वह व्यापक, दृश्यमान भूताकाश से श्रेष्ठ है। आत्मा चेतन है। वह सब विकार तथा विकल्पों से रहित है। यह आत्मा को ही इस तरह जीव कहा गया है। आत्मा दृष्टा, दृश्य, दर्शनरहित प्रकाशरूप है। वह नित्य व्यापक एवं विकारशून्य है। जिस प्रकार सूर्य ज्योतिस्वरूप है- उसे प्रकाशित करने के लिए अन्य प्रकाश की आवश्यकता नही होती, उसी प्रकार आत्मा भी अपने से सर्वदा प्रकाशमान है। आत्मा कभी भी अप्रकाशित नही है, उसे प्रकाशित करने के लिये अन्य ज्योति की अपेक्षा नही होती। त्रिपुटी जगत् उसी के प्रकाश से अनुभूत होता है। किन्तु दृश्यत्रिपुटी प्रतिभासित होने के कारण मिथ्या है। नित्य, असंग, निर्विकार, एकरस, प्रकाश एवं आनन्द ही सबकी आत्मा है और वही पारमार्थिक सत्य है। अज्ञानदशा में आत्मा का अभाव, अज्ञान और जगत् का ज्ञान जो कुछ प्रतीत होता है, वह सत्य नही है। दृश्य दर्शन द्रष्टा त्रिपुटीसाक्षी विशुद्ध चिदात्मा में नही है। जगत् का अनुभूव एक, अद्वितीय परमात्मा के अखण्ड प्रकाश में पर्यवसित होता है त्रिपुटी जगत् किंचिन्मात्र भी भिन्नरूप या संस्काररूप में विद्यमान नही रहता। अखण्ड चित्प्रकाश में अज्ञान किसी भी काल में नही है। वह केवल कल्पित होकर ही रहता है। आत्मा का ऐसा निरूपण उत्तम मुमुक्षु के लिए परम उपादेय है। जो सम्यक् अनुभवसिद्ध है, वह जीवनमुक्त का सहज सिद्ध ज्ञान है। उत्तम मुमुक्षु उसी का साक्षात् अवलम्बन कर क्षण-क्षण में विशुद्ध चिदात्मा का प्रत्यक्षरूप में अनुभव करता है। यह समाधि या तीसरी ज्ञानभूमिका है। इसके स्वाभाविक अभ्यास से निविकल्पक समाधि के परिपाक में भेदवासना निवृत्त हो जाती है। फलस्वरूप अंतिम साक्षात्कारवृत्ति का उदय होता है। यह चौथी ज्ञान भूमिका निम्नोक्त प्रकार से है।

आत्मा विशुद्धचैतत्यस्वरूपः शाश्वतो विभः ।
निर्विकारः स्वयज्योतिः स्वभावोऽर्कप्रकाशवत् ।।

आत्मा अनुभविता अनुभाव्य आदि त्रिपुटीरहित शुद्ध अनुभव है। वह सर्वव्यापी तथा सबका आधार है। जिस प्रकार अग्नि उष्णरूप है, उसी प्रकार आत्मा स्वप्रकाश एवं चैतन्यरूप है। हितकर उपदेश का पुनः पुनः कथन करने से मुमुक्षु का ज्ञान दृढ होकर मोक्ष पर्यवसित होता है। इसीलिए "आत्मा विशुद्ध चैतन्य

[13] **वही**-6.1.13.4

है" यह फिर जोर देकर कहा जा रहा है। चिदाभासत्रिपुटी मिथ्या है, क्योकि वह साभास अन्तःकरण का परिणाम मात्र है। "मैं यह अनुभव करता हूँ" इस प्रकार विज्ञानमयकोश के अन्तःपाती वृत्तिज्ञान त्रिपुटीसाक्षी प्रत्यग् चैतन्य से ग्रस्त है। सूक्ष्म भोक्ता भी सौषुप्त आनन्दमय से कवलित होता है। सौषुप्त आनन्दमय का अज्ञान अध्यस्तमात्र है, क्योंकि अज्ञान के साथ उसका कोई अभ्यास नहीं है। सुतराम, वह अज्ञानविनिर्मुक्त, अखण्ड प्रकाशरूप है। अज्ञान का कार्य या किसी प्रकार की सूक्ष्म दृश्यत्रिपुटी उसमें भासित नहीं हो सकती।

अग्नि सम्बन्धी उष्णता के समान प्रकाश आत्मा का निज सनातन स्वभाव है। उसका कभी नाश नही हो सकता। फिर, सूर्य आदि अनात्म पदार्थो के प्रकाश अत्यन्त विलक्षण है। सूर्य आदि आत्मचैतन्य की सहायता से आत्मा में आरोपित होकर प्रकाशित होते हैं पर चिदात्मा स्वयं और सर्वदा प्रकाशमान रहता है। महाप्रलय में सूर्य आदि कोई अनात्मपदार्थ नही रह जाता, परन्तु आत्मबह्म निज, अखण्ड प्रकाश स्वरूप में उस समय भी विद्यमान रहता है। अन्यथा महाप्रलय की सिद्धि ही किस प्रकार होगी? निरावरण चित्प्रकाश ही वास्तविक महाप्रलय है। आत्मा की व्यापकता और अधिष्ठानता परमार्थतः मिथ्या है। वह आत्मा का तटस्थ लक्षणमात्र है। चिदात्मा के सिवा कुछ भी किसी देश या किसी काल में नही है, नही था और न रहेगा। तटस्थ और स्वरूप दोनों लक्षणों की सहायता से वेदान्तशास्त्र में आत्मा का निरूपण निम्नोक्त प्रकार से है।

आत्माऽनुभवमात्रात्मा सर्वगः सर्वसंश्रयः ।
प्रकाशानन्यचैतन्यव्यक्तिरिक्तोऽनलोष्णवत् ।।

परमात्मा अन्तःकरण चतुष्ट्य से भिन्न होता हुआ भी स्वयं प्रकाशक है। वह बाहरी एवं आन्तर समस्त कल्पित पदार्थो में व्यापक है। वह अखण्ड एवं निष्प्रकम्प है। आत्मा ही ज्योतिः स्वरूप है। जड दृष्टरूप चित्त आत्मचैतन्य में अध्यस्त होकर चेतनायुक्त प्रतीत होता[14] और अन्य पदार्थो के प्रकाशन में समर्थ होता है। आत्मा निर्विषय चैतन्य है वह अन्य निरपेक्ष होकर अपने में सर्वदा प्रकाशमान रहता है और स्वरूपाध्यस्त अविद्या अन्तःकरण, समस्त साभास त्रिपुटी कल्पित दृश्यवर्ग को अपनी ज्योति से उद्भासित करता हैं। फलस्वरूप साक्षीभास्य साभास अन्तःकरणवृत्ति विषयों के प्रकाशन में समर्थ होती है।

[14] श्रीमद्भागवतगीता- 13.6

साक्षात्कारवृत्ति द्वारा अज्ञान बाधित होता है। बाधिका वृत्ति भी कृतक-रेणु के समान स्वयं बाधित हो जाती है। आत्मा नित्य, निराभास, स्वयंज्योतिस्वरूप में परिशिष्ट रहता है। जिस प्रकार आत्मा में फल व्याप्ति सम्भव नही है, उसी प्रकार जीवन्मुक्त पुरुष में बन्ध, विक्षेप या समाधि-अनुष्ठान कुछ भी नहीं रहता। जिस प्रकार आकाश सर्वदा आकाशभाव में अवस्थित है, उसी प्रकार बह्मवेत्ता निज ब्रह्मस्वरूप में नित्य-निरन्तर स्थित रहते है। इसीलिए सुरघु, जनक आदि ज्ञानी पुरुष पुनः समाधि का अनुष्ठान न करके भी सर्वदा ही समाहित है, उनकी समाधि कभी भी भंग नहीं होती। व्युत्थान या समाधि आत्मा में कल्पित मात्र है। जीवनमुक्ति सम्बन्धी विलक्षण आनन्द पंचमी आदि ज्ञानोत्तर तीन भूमिकाएं मुमुक्षु की बोधसाधक उत्तम शास्त्रीय कल्पना है।

सम्यक् ज्ञान होने पर ही मुक्ति होती है। आत्मबोध के बिना वैराग्य परमानन्द प्रदान में समर्थ नही है। दसवें प्रकरण में ज्ञातत्वोपलक्षित इसी परब्रह्मस्वरूप का विस्तृत निरूपण किया जायेगा।

चित्तवर्जितचिन्मात्रः परमात्मावभासकः ।
स बाह्याभ्यन्तरव्यापी निष्कलो निष्चलाश्रयः ।।

आत्मा चिद्रूप, निर्मल एवं ज्ञानरूप है। उसका क्षय नही है और निजस्वरूप होने से वह ग्रहण एवं त्याग के भी अयोग्य है। आत्मा में देश, काल, जाति आदि कृत कोई सम्बन्ध नहीं है। आत्मा चेत्य, चित्त, चिन्तन आदि से रहित शुद्ध चैतन्य है। आत्मा सर्वदा चिदानन्दस्वभाव में स्थित है, उसमें अविद्याध्यास नहीं है। वह अनावृत्त प्रकाशरूप है। गृहीता और त्यागकर्ता का निज स्वरूप होने से आत्मा ग्रहण या त्याग का विषय नही है। उसमें मायाकल्पित देश-कालादि एवं तत्कृत सम्बन्ध हो नही सकते। आत्मज्ञानी अपने स्वरूप को इस प्रकार निश्चित रूप से जानते है।

स आत्मा चिन्मयः स्वस्थः प्रबुद्धोपचयच्युतः ।
हेयग्रह्मोज्झितो देशकालजात्याद्यसंगतः ।।

जिस प्रकार वायु ब्रह्माण्ड के समस्त भूतों में व्याप्त रहकर भी असंग रहती है, उसी प्रकार प्रत्यगात्मा भी स्थल सूक्ष्म एवं कारण शरीरों से सर्वदा विनिर्मुक्त रहता है। देह, प्राण, मन और अविद्या का अध्यास आत्मा में नही है। परस्पर विरूद्ध दो वस्तुओं में किसी प्रकार का सम्बन्ध नही रह सकता। देह, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि, अहंकार और अविद्या सभी अनात्मा है। आत्मा से इनका "मैं, मेरा" किसी प्रकार का सम्बन्ध सम्भव नहीं है। देह, प्राण और मन के साथ आत्मा का सम्बन्ध भ्रम से प्रतीत होता है। अध्यासकृत है, वास्तव नहीं। इस प्रकार विवेक, विचार के फलस्वरूप अपने स्वरूप का अनुभव सहज सिद्ध हो जाता और उत्तर मुमुक्षु पुरुष अनायास मुक्त हो जाता है। वही बात निम्नोक्त श्लोक में कही गयी है।

ब्रह्माण्डे च यथा वायुः सर्वभूतगतस्तथा ।
स एव भगवानात्मा तनुमुक्तो व्यवस्थितः ।।

जो चैतन्यमात्र सत्ता आकाश, आभूषण और सूर्य में विराजमान है और भूमि-विवर में विद्यमान है, वही चैतन्य छोटे से कीडे में भी अवस्थित है। स्वर्ग, पृथिवी, पाताल, आकाश सर्वत्र आत्मचैतन्य ही परिव्याप्त है। पृथिवी के छिद्र में, पशु, पक्षी एवं कीट के भीतर भी वही एक चित्स्वरूप विद्यमान है।

यह अखण्ड प्रकाश और आनन्द मुमुक्षु के चित्त में सम्यक् उदित होने पर वह ज्ञान तथा सुखरूप इसी एक अद्वय संवितत्त्व में "अहं-इदं" आदि सकल दृश्यप्रपंच तथा उनकी वासनाओं के सहित निमग्न होकर परिपूर्ण प्रत्यगानन्दरूप में निम्नोक्त प्रकार से प्रतिष्ठित हो जाता है।

एवं चिद्गगनाभोगे भूषणे व्योम्नि भास्करे ।
धराविवरकोशस्था सैव चित् कीटकोटरे ।।

बन्ध, मोक्ष, एकत्व और द्वैत कुछ भी नहीं है। वे कल्पित है, चैतन्यघन ब्रह्ममात्र विद्यमान एवं प्रकाशित है। द्वैत, अद्वैत या बन्धनमुक्ति की प्रतीति मिथ्याज्ञान है। एक सनातन ब्रह्म ही निम्नोक्त प्रकार से विराजमान और सर्वत्र प्रकाशित है।

न बन्धोऽस्ति न मोक्षोऽस्ति ब्रह्म वास्ति निरन्तरम् ।
नैकमस्मि न च द्वैतं संवित् स्फारं विजृम्भते ।।

ज्ञान, भुवन, जन्तुश्रेणी, देवदत्तादि शत्रु मेरे मित्र एवं बन्धु बान्धवगण और सभी निश्चित रूप से एकमात्र ब्रह्म है। जीव, ईश्वर, स्वर्ग, मृत्यु, पाताल सब ब्रह्म है। पर्वतादि सब दृश्य भी ब्रह्म है। मैं भी ब्रह्म हूँ। मेरा शत्रु और मित्र सभी ब्रह्म है। इस प्रकार पूर्ण आत्मज्ञानी को सर्वत्र नित्य-निरन्तर ब्रह्मभावना होती है।

ब्रह्म चिद् ब्रह्म भुवनं ब्रह्म भूतपरम्परा ।
ब्रह्माहं ब्रह्म मच्छत्रुब्रह्म मन्मित्रबान्धवाः ।।

सनातन भारतीय दर्शन में आत्मा का स्वरूप- आत्मा सम्प्रत्यय भारतीय दर्शन का आधार स्तम्भ है। बौद्ध और चार्वाक दर्शनों को छोड दे तो समस्त भारतीय दर्शन आत्मा के अस्तित्व में विश्वास करता है। यद्यपि बौद्ध और चार्वाक आत्म-अस्तित्व को अस्वीकार करते है तथापि आत्मिक विचार से वे भी अछूते नहीं है। चार्वाक और बौद्ध आत्मा के सन्दर्भ में अपने नकारात्मक विचार प्रस्तुत करते है और किसी वस्तु को नकारने तात्पर्य यही है कि कुछ है, जिसको नकारा जा रहा है। जैन दर्शन में आत्मा के लिए जीव शब्द का प्रयोग हुआ है। जैन दर्शन सर्वात्मवाद का पोषक है। इसके अनुसार वनस्पति में भी आत्मा है। जैन मतानुसार आत्मा शुद्ध अवस्था में समस्त सांसारिक बन्धनों से परे नित्यमुक्त होती है, लेकिन अविद्या के कारण पुद्गलादि से सम्बन्धित होकर वह जीव रूप में बन्धनग्रस्त होती है। उपरोक्त वेदेत्तर दर्शनों के बाद वैदिक दर्शन आत्मा के सम्बन्ध में लगभग समान अवधारणा रखते है। वैदिक दर्शन में सर्वप्रथम वेदों में आत्मा को अभय ज्योति के रूप में निरूपित किया गया।[15] वेदों में आत्मा के सन्दर्भ में माना है कि आत्मा एक ही सत् चित आनंद पर ब्रह्म है, विप्रजन उसे अनेक मानते है। यहां आत्मा और ब्रह्म का तादात्म्य स्थापित किया गया है। स्पष्ट है कि वेदों में अद्वैतवाद के बीज बोये गये है। उपनिषदों में अद्वैतवाद स्पष्ट रूप से उभरता है। वहां बताया गया है कि वस्तुतः आत्मा का वास्तविक स्वरूप ब्रह्म है।

[15] ऋग्वेद-1.164.46

लेकिन अज्ञानवश मनुष्य आत्मा व ब्रह्म में भेद करता है। इसी कारण वह बन्धनग्रस्त होता है। जब जीवात्मा को इस एकत्व का ज्ञान हो जाता है तो वह भ्रम से एकाकार हो जाता है। इस प्रकार उपनिषदों में माना गया है कि आत्मा ही ब्रह्म है। वह नित्य है अर्थात् न जन्म लेता है और न मरता है। भारतीय दर्शन में शंकराचार्य के आत्मा सम्बन्धी विचार उपनिषदों की ही देन है। अतः उनकी पुनरावृत्ति अनावश्यक है। वैदिक परम्परा में सांख्य दर्शन आत्मा के लिए पुरुष शब्द का प्रयोग करता है। उनके मतानुसार यह संसार दो भौतिक तत्वों की देन है- पुरुष और प्रकृति। पुरुष की सत्ता स्वयंसिद्ध है। उसमें अस्तित्व के खण्डन से भी उसकी सिद्धि हो जाती है। सांख्य मानते है कि आत्मा स्वरूपतः सुख और दुःख दोनों से परे है। बन्धनावस्था में वह सुख और दुःख दोनों का अनुभव करती है, लेकिन मोक्षावस्था में वह इनसे परे तटस्थ अवस्था में रहती है। वैदिक परम्परा में न्याय वैशेषिक और मीमांसा के आत्मा सम्बन्धी विचार कुछ हटकर है। ये बहुतत्त्ववाद के पोषक है। जहां भारतीय दर्शन चेतना को आत्मा का स्वरूप लक्षण मानते है, वहीं उपरोक्त दर्शन मानते है कि चेतना आत्मा का आगन्तुक गुण है। इनके अनुसार आत्मा का स्वरूप चेतना नही है वरन् जब आत्मा मन आदि द्वारा बाहरी वस्तुओं से सम्बन्धित होती है तब आत्मा में चेतना का संचार होता है। अतः इनके अनुसार मोक्षावस्था में आत्मा जड़ समान रहती है।

निष्कर्ष-

योगवासिष्ठ वेदान्त दर्शन का अतिमहत्वपूर्ण आध्यात्मिक ग्रंथ है। सनातन भारतीय मनीषा के विशिष्ट ग्रंथों में योगवासिष्ठ की तुलना विद्वज्जन श्रीमद्भगवद्गीता से करते हैं। संस्कृत वाङ्मय में श्रीमद्भगवद्गीता और रामचरितमानस का जो महत्त्व है वही योगवासिष्ठ का महत्त्व है। आज के समय में मानसिक तनाव के वातावरण में जो मनोवैज्ञानिक समस्याएं मनुष्य के सामने उत्पन्न हो रही है उसका समाधान योगवासिष्ठ के सिद्धांतो में देखा जा सकता है। बुद्धदर्शी और कान्तदर्शी व्यक्ति ही इस आत्मतत्व को जान सकता है। ऋग्वेद में कहा है कि "धीरासः पदं कवयो नयन्ति"[16] कान्तदर्शी विद्वान् मनुष्यों को आत्मज्ञान के मार्ग पर ले जाते है। ये वैदिक मुनीश्वरों ने ही हमें ईश्वर निकटता का मार्ग प्रशस्त किया है तथा इस मार्ग का अनुगमन कर उस परम तत्त्व का आत्मसात् कर सकते है। यह आत्मा एक होकर

[16] ऋग्वेद- 1.146.4

भी अनेक रूपा है उसका वर्णन अनेक रूपा है कहा भी है कि "सुपर्णं विप्राः कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति"[17] कान्तदर्शी मेधावी परम तत्त्व का ही अनेकविधि वर्णन करते है। आत्मा अनुगम्य है, भक्तियोग और ज्ञानयोग से ही उसको समझा जा सकता है। इस विषय पर योगवासिष्ठ महारामायण में आत्मतत्त्व का सुंदर विवेचन किया गया है। योगवासिष्ठ के अनुसार अभ्यास के विना श्रेष्ठ आत्मज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता है-"अभ्यासेन विना साधो नभ्युदेत्यात्मभावना"।[18] हम सब आत्माभ्यास से आत्म विषयक ज्ञान को समझे। गीता में भी कहा है कि इहलोक में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला निसंदेह कुछ भी नहीं है। हमारा ज्ञान ही आत्मतत्व का दर्शन करा सकता है, यथा-

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ।।[19]

[17] ऋग्वेद- 10.114.5

[18] योगवासिष्ठ-6.1.11.1

[19] श्रीमद्भगवद्गीता, 4.38